भास के रूपकों में प्रतिपादित वर्ण एवं जाति व्यवस्था एक अनुशीलन

*डॉ. हरेन्द्र रजक

संस्कृत नाटकों के विकास के इतिहास में भास का वह जाज्वल्यमान मणि है जिनकी कीर्ति–कौमुदी के प्रसृति काल के दुर्दम्य प्रभाव से अस्पष्ट रही लेकिन सुदूर दक्षिण से लेकर ध्रुव उत्तर तक एवं प्राची से लेकर प्रतीची तक सम्पूर्ण भारतखण्ड में चमकती रही । नाटक की पञ्चम वेद होने का जो गौरव भरत ने प्रदान किया तथा कालिदास ने जो उसे भिन्नरूचि–जनों का एकत्र समाराघन कहा इसकी सम्यक् परिपुष्टि भास के नाटकों से होती हैं। नाटक कवित्व का चरम परिपाक है – 'नाटकान्तं कवित्वम्'। यह नाट्य–साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय बात है। समाज के विभिन्न आदर्श नियंत्रित जन–रीतियों, प्रथाओं और रूढ़ियों के रूप में पाये जाते है। अतः कार्य कलापों में व्यवस्था स्थापित करने एवं पारस्परिक निर्भयता बनाये रखने के हेतु यह आवश्यक है कि इनको एक विशेष कार्य के आधार पर संगठित नाम (Social Institution) हैं जो किसी अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति के लिए सामाजिक विरासत में स्थापित सामूहिक व्यवहारों का एक जटिल एवं घनिष्ट संगठन हैं।

मनुष्यों के व्यवहारों पर प्रवृतियों को नियंत्रित करने के लिए आचार–संहिता अपेक्षित होती है। इस संहिता के धरातल पर भी सामाजिक संस्थानों का गठन होता है कि भास के रूपकों में विभिन्न सामाजिक संस्थाओं में वर्ण एवं जाति व्यवस्था भी एक है। वर्ण–व्यवस्था श्रम–विभाजन के आधार पर प्रतिष्ठित थी । यह विभाजन आधरवत् था लम्बवत् नहीं। वैदिक युग में एक ही परिवार के अन्तर्गत कई वर्णो के लोग साथ–साथ रहते थें ; उँच–नीच का भाव नहीं था। वर्ण–परिर्वतन सम्भव और सरल था समाज तरलावस्था में था। लेकिन उत्तर वैदिक काल में सामाजिक वर्ग स्थायी होने लगा , वर्ण–व्यवस्था जन्मगत होने लगा । समाज में क्रमशः आर्येतर तत्वों का प्रवेश एवं रक्त की शुद्धि और प्रजातीय अभिमान बनाये रखने के लिए भेद प्रभेद स्थायी होने लगे।[1]

स्पस्ट हैं कि वर्ण–विभाजन सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से क्रियात्मक और श्रमगत था । सभी वर्ण अपने–अपने स्थान में महत्वपूर्ण थे । अपने जीवन में चरम लक्ष्य निःश्रेयस की प्राप्ति वर्ण धर्म के पालन से ही संभव था । वर्ण और जाति दोनों भिन्नार्थक हैं जब व्यक्तियों का एक समूह कई सन्ततियों से वंश–परंपरागत प्रणाली के अनुसार एक ही देश में रहता हो तब उसे जाति (Race) कहा जाता है [2]। प्रत्येक जाति के मानसिक युग अलग–अलग होते है। और रक्त सम्बन्ध रखने वाले प्राणियों का वर्ग है। जो अपने शारीरिक चिन्हों की विशेषता से दूसरे से भिन्न दृष्टिगोचर होते है। जाति में जन्म से भौतिक लक्षण, आकार–प्रकार, माप–तौल, त्वाचा, रंग आदि समान पाये जाते है। समाज शास्त्रियों ने जाति की उक्त परिभाषा ग्रहण नहीं की है। वे इसे वर्ग चेतना के निर्वाहनार्थ मानव समूह (Caste) के रूप में ग्रहण करते है। अतएव जाति कुतुम्बों का वह समूह हैं जिसका अपना एक नीजी नाम है ; जिसकी सदस्यता पैतृकता द्वारा निर्धारित होती है। जिसके अन्दर विवाह करते है और अपना नीजी पेशा होता है। या किसी पौराणिक देवता या पुरूष से बताते हैं।[3]

वैचारिक संस्थाओं को चलाने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। जब इसका अभाव होती है तब वैचारिक संस्था शिथिल पड़ जाती है। जाति का आधार प्राकृतिक रक्त सम्बन्ध है। इसकी ओर सहज प्रवृति होती है। इसको चलाने के लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं । सामान्यतः वर्ण और जाति को एक ही समझा जाता है।[4]

ब्राह्मण –नाटककार भास ने वर्ण चतुष्टय की श्रृंखला स्वीकार की है। उन्होंने चतुर्णा वर्णानामम–[5] द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णो को महत्व दिया है। ये चारों वर्ण जब अपने–अपने कर्तव्य और अधिकारों का अनुसरण करते हैं तो समाज में पूर्ण शान्ति स्थापित होती है। भास ने ब्राह्मण वर्ण को सबसे अधिक प्रतिष्ठा प्रदान की है। उन्होंने मघ्यम व्यायोग में लिखा है कि ब्राह्मण समस्त पृथ्वी में सदा पूजनीय है अगर वह अपराध भी करे तो बध्य नहीं होता – जानामि सर्वत्र सदा च नाम द्वजोतमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम् ।[6]

फिर–सर्वापराधेऽवध्यत्वान्मुच्यती द्विजसत्ताम :[7] स्पस्ट है कि ब्राह्मण वर्णो में ही नही समस्त पृथ्वी पर पूज्य माना गया है। राजा विशिष्ट ब्राह्मण के सत्कारार्थ आसन से उठ जाया करता था । अध्ययन, अध्यापन, यजन–याजन, दान, और प्रतिग्रह, ब्राह्मण के ये षट्कार्य थे । ये जीवन चार्या के अंग थे। विद्या उसके भूषण और विद्याध्ययन उसका परम कर्तव्य था। वेद–वेदागं के अनुशीलन और वेदमन्त्रों के पठन–पाठन का प्रमुख अधिकारी ब्राह्मण ही था । गों, पतिव्रता स्त्री और ब्राह्मण इन तीनों को पवित्रता और पूज्यता की दृष्टि से समान स्थान प्राप्त था । कर्णभार में रूपक में कर्ण कहता हैं कि ब्राह्मण होने पर मैं याचक को सर्वस्व दे सकता हूँ।

* पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप, यू.जी.सी., संस्कृत विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया स्मारक महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

अक्षयोऽस्तु गोब्राह्मणानाम् । अक्षयोऽस्तु पतिव्रतात्रम् ।
अक्षयोऽस्तु रणेष्वपराड.मुखानां योधपुरूषाणाम् ।[8]

भीष्म् द्रोण के साथ अपनी तुलना करते हुए कहते हैं कि आप ब्राह्मण होने से ही श्रेष्ठ और पूज्यतम हैं ।[9] ब्राह्मण नित्य दैनिक हवन, यज्ञादि का अनुष्ठान करता था[10] राजा यज्ञों में ब्राह्मणों को आमंत्रित करते थे और यज्ञावसान पर उन्हें प्रभूत दक्षिणा देते थे।[11] ब्राह्मण को दक्षिणा देना पवित्र कार्य समझा जाता था । बिना दक्षिणा के अनुष्ठान की सफलता नहीं मानी जाती थी । यज्ञोपवीत द्विज का महत् उपकरण था । इसके बिना कोई ब्राह्मण नहीं माना जाता था । यष्टि भी ब्राह्मण–वेश का एक आवश्यक उपकरण थी ।[12]

क्षत्रिय :– समाज में ब्राह्मण वर्ण के पश्चात् क्षत्रिय वर्ण का महत्वपूर्ण स्थान था । जो प्रजा का रक्षा करने में निपुन हों । शूर और पराक्रमी हो और दुष्टों का दमन करने में समर्थ हो वे क्षत्रिय कहलाते थे । भास के नाटकों के नायक में क्षत्रियोचित सभी गुण पाये जाते थे । प्रतिमा नाटक में जब रावण द्वारा सीता का बलात् हरण कर ले जाता हैं तो सीता कहती है अगर राम में क्षात्र, धर्म में आस्था है तो मेरी रक्षा करें[13] । क्षत्रिय के सम्पति उसके शस्त्र होते थे[14] । क्षत्रिय केवल प्रजा के पालन के लिए सम्पति संग्रहित करता था । यहाँ तक अपना सर्वस्व ब्राह्मणों के दान में दे देता था ।[15] प्रतिज्ञा–पालन क्षत्रियों का व्रत था[16] क्षत्रिय कुमार के लिए शास्त्र विद्या एवं अनुर्विद्या का ज्ञान परमावश्यक था ।

वैश्य :—चारूदत्त नाटक में 'श्रेष्ठिचत्वरे–[17] आया हैं, जिससे ब्राह्मण और क्षत्रियों के समान वैश्य का भी समाज में उच्च स्थान प्रतीत होता हैं, व्यापार और वाणिज्य उनका प्रमुख व्यवसाय था । संवाहक अपना परिचय देते हुए भी कहता हैं। **प्रकृत्या वणिगहम् । ततो मागधेयपरिवृत्ततया दशय संवाहकवृति मुपजीवामि** ।[18] स्पस्ट है कि वणिक् को कार्य–व्यापार व्यवसाय करना था, पर भाग्य प्रतिकुल होने पर संवाहक को नौकरी करनी पड़ी । भास के उल्लेखानुसार उज्जयिनी में समृद्ध सार्थवाह की वृति करता था । संवाहक ने उसे 'सार्थवाहपुत्र' कहा हैं, इससे यह प्रतित होता है कि चारूदत्त वणिक था, किन्तु आगे उसकी पत्नी ब्राह्मणी आती हैं, इसलिए चारूदत्त को वर्ण की दृष्टि से ब्राह्मण ही माना गया है। स्पस्ट है कि भास के समय में वणिक कुल अलग रहते थे । ये देश को समृद्ध करने के लिए व्यापार में तत्पर रहते थे । सार्थ, शब्द व्यापारियों के समुदाय के लिए प्रयुक्त होता था[20] । और इस समुदाय का प्रधान 'सार्थवाह' कहलाता था । भास ने धन–प्रधान व्यवसाय के कारण वैश्यों को स्वभावतः कठोर, लोभी, शिष्ठजनद्वेषी बतलाया है। यथाः ।

लुब्धोऽर्यवान् साधुजनावमानी वणिक स्ववृतावतिकर्कशश्च ।[21]
यस्तस्य यदि नाम लपस्ये भवामि दुःखोपहता चचित्ते ।।

शूद्र :– वर्ण परम्परा में शुद्र का चतुर्थ स्थान प्राप्त था । समाज में यह चारों वर्णो में अधम माना गया है। प्रतिमा नाटक में आया है कि शुद्र देवार्चन के समय वेद–मंत्रों का उच्चारण किये वगैरह देवताओं को प्रणाम करते थे ।[22] । फिर पञ्चरात्रम् में आया हैं कि शूद्र को अस्पृश्य–सा समझते थे ।[23] शुद्रों का सानिध्य वे स्वीकार नहीं करते थे । शुद्र भी कुलीन व्यक्तियों के साथ आदरपूर्वक अभिभाषण आदि करते थे ।[24]

अन्त्यज :– भास ने चतुर वर्णो के अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यक्तियों का भी उल्लेख किया हैं ; जिनकी गणना अन्त्यज में होती थी ये अस्पृश्य होने के कारण नगर से बाहर प्रच्छन रूप से निवास करते थे । ये कुल–विकल एवं कुल भ्रंश होते थे । अर्थात् उनका कोई कुल नही होता था । यथा, रूप, ज्ञान, बल, सम्पति सब कुछ होने के बाद भी उनका चरित्र अशुद्ध ही माना जाता था । भास द्वारा अविमारक में बताया गया है।

श्रुतमस्माभिरन्त्यज इति ।[25]

फिर :—देवं रूपं ब्राह्मणजं तस्य वाक्यं, क्षात्रं तेजःसौकुमार्य बलं च ।[26] यधेवं स्यात् सत्यमस्यन्त्यजत्वं, व्यर्थोऽस्माकं शास्त्रमार्गेषु खेदः ।। ऋषियों के शाप से कोई भी व्यक्ति च्युत होकर अन्त्यज अवस्था को प्राप्त करता था । सवीरराज ऋषि के अभिशाप से ही अन्त्यज को प्राप्त हुआ था । भास ने इस परिस्थिति का बहुत ही सुन्दर निरूपण किया हैं। भास के युग में वर्ण–व्यवस्था अधिक कठोर थी । कोई भी व्यक्ति अपने वर्ण का परित्याग नहीं कर सकता था और न ही अनुलोम या प्रतिलोम विवाह ही प्रचलित थे । भास युग में जाति–भेद का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। इस जाति–भेद का मूलाधार अर्न्तजाति विवाह पद्धति है जिसके प्रचलन से वर्ण–संकरता का जन्म होता है। यह वर्ण संकरता ही जाति–भेद की जननी है। भास की कृतियों के अध्ययन से वर्ण–संकरता की गंध नहीं आती है। अतः स्पष्ट होता है कि भास ने जाति–भेद की उपेक्षा की हैं। और यह सर्वजनीन सत्य है कि भास के नाटको में जाति–वर्णन नहीं मिलता हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

(1) भारतीय नीति का विकास ; बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। (2) महाकवि भास – हिन्दी ग्रन्थ अकादमी – मध्यप्रदेश। (3) डॉ० राजेश्वर प्रसाद अर्गल, सामज शास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, होस्पीटल रोड, आगरा । (4) महाकवि भास – हिन्दी ग्रन्थ अकादमी – मध्यप्रदेश (5)प्रतिमा नाटक – अंक – 4/7 (6) मध्यमव्यायोग–अंक–1/9 (7) मध्यमव्यायोग – अंक – 1/34 (8) कर्णभार – पृष्ठ – 13–14 (9) द्विजो भवान् क्षत्रियवंशजा वयंगुरूर्भवान् शिष्यमहतरा वयम् । पञचरात्रम् – 1/27 (10) भो : नैत्यकावसानं प्राणिधर्ममनुतिष्ठति मयिकोनु खल्वयंमासां प्रतिमानामल्पान्तराकृतिरिव प्रतिमागृहं प्रविष्ट :। प्रतिमा नाटक –अंक–3, पृष्ठ–96 (11) पञ्चरात्रम् – 1/48 (12) पञ्चरात्रम् –1/5 (13) क्षत्रधर्मैं यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् – प्रतिमा नाटक – 5/21 (14) वणाधीना क्षत्रियाणां समृद्धि – पञ्चरात्रम् – 1/24 (15) विप्रोत्संगे वितमावर्ज्य सर्व राज्ञा दंयं चापमात्रं सुतेभ्य – पञ्चरात्रम् – 1/24 (16) तस्मात् प्रतिज्ञां कुरू वीर । संत्या सत्या प्रतिज्ञा हि सदा कुरूणाम् – पञ्चरात्रम्–1/49 (17) चारूदत्त, अंक– 4, पृष्ठ–111 (18) चारूदत्त, अंक–2, पृष्ठ–60 (19) चारूदत्त, अंकं–2, पृष्ठ–61 (20) महाकवि भास– डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री (21) चारूदत्त अंक–3, श्लोक–07 (22) वार्षलस्तु प्रणाय् : स्यादमन्त्रार्चितदैवतः । प्रतिमानाटकम् – 3/5 (23) द्विज इव वृषलं पार्श्वे न सहते – पञ्चरात्रम्–1/6 (24) नीचैरप्ययिभाष्यान्ते नामभि : क्षत्रियान्वयाः – पञ्चरात्रम् – 2/47 (25) अविमारक, प्रथम अंक – पृष्ठ – 17 (26) अविमारक, 1/7